दस्तक, हौले से...

यह तीसरी या चौथी कक्षा की बात है, घर में 'पराग' का नया अंक आया था। मैं स्कूल से लौटा था। मां चाहती थी, मैं पहले कपड़े बदलकर खाना खाऊं और मेरा मन उस विशेषांक में अटका था जिसकी मैं कब से प्रतीक्षा कर रहा था। किसी तरह जबरन मैंने खाना निगला।

वैसी उत्कंठा दुबारा महसूस नहीं हुई।

क्या था जो मेरा जीव उस अंक को पलटने को मरा जा रहा था ?

उस उम्र में जब घर पर आने वाले सभी बड़े मेरी कक्षा और फिर प्रत्याशित उपलब्धियां सुनने के बाद अपेक्षित तारीफों के पुल बांध देते थे (जिन तारीफों का बचकानापन (!) दुनिया का हर बच्चा समझता है।) यह पत्रिका मुझे विचार की दुनिया में प्रविष्ट होने का पहला गंभीर निमंत्रण थी। मैं जो सारी 'आवारगियों' से दूर रखा गया आदर्श 'घरघुस्सू' बच्चा था। (जिसकी सारी कसर मैंने बाद में निकाली) जिसे क्रिकेट की बॉल डरावनी लगती थी और पतंग उड़ाना 'बेवकूफी' और इस कारण जो यह मानने ही जा रहा था कि मैं सबसे अलग और (इसलिए) कुछ 'गड़बड़' हूं, मुझे इस पत्रिका ने मेरी 'अस्मिता' दी। यह ऐसी गरिमा थी जिसे प्रदर्शन की आकांक्षा नहीं थी यह मेरा नितातं निजी कोना था 'ए रूम ऑफ वंस ओन '।

पर यह बात मैं अभी समझा हूं - इस अंक के सम्पादन के दौरान।

●

मैं जो एक गुरुतर दायित्वबोध के साथ इस अंक के संपादन से जुड़ा था, अंक के लिए आए लेख पढ़कर अनगिनत बहसों से गुजरकर, वह पंचर हो गया है। कोई आश्चर्य नहीं कि अंक की अनेक रचनाएं नॉस्टेल्जिया से जुड़ी हुई हैं। इसमें गलत क्या है ? हम अपने बड़प्पन को नहीं छोड़ेंगे तो खाक संवाद करेंगे बच्चों से !

हमें (यानी मुझे और विश्वंभर को) यह लगता है कि इस अंक का यह सार्थक हस्तक्षेप (होने जा रहा) है कि यह अंक बाल साहित्य पर गंभीर विमर्श की पहली अनिवार्य शर्त इसे बनाता है कि 'गंभीरता' को वयस्क दायरे की कैद से बाहर निकाला जाए। बबचे इस स्वाधीन देश के नागरिक हैं और यह उनका अधिकार है कि उन्हें उपदेशों की खुराक नहीं सहभागिता की चुनौती मिले।

यह चुनौती बच्चे इयत्ता की पहली स्वीकृति है।

बच्चे के बचपन को बचाए रखने की चिंता के पीछे जो रैक्वग्रंथी छुपी है वह मिथकीय राष्ट्रभक्ति से बजबजाई, सामाजिक भेदों के प्रति बेपरवाह, संवादहीनता के टापू पर बैठी आत्मकेंद्रित भावी पीढ़ी ही तैयार करेगी। (कहीं तो पढ़ा था कि जब बाबरी मस्जिद गिरी तब मसूरी में देश के कर्णधार बर्थ डे पार्टी मना रहे थे ।)

बचे छल नहीं सच चाहते हैं। उन्हें साहित्य में अपने देश, अपने समाज की सही तस्वीर चाहिए। उन्हें सपने भी चाहिए (किसे नहीं चाहिए ?)। उन्हें अपने सपनों में आप बड़ों का निर्देशन नहीं चाहिए, उन्हें आनंद के साथ ग्लानि का जोड़ नहीं चाहिए, उन्हें बड़ों की उम्मीदों के पहाड़ के सामने अपने बौनेपन की क्रूर पहचान नहीं चाहिए।

●

बाल साहित्य की एकांगी समझ एक अजीब गुलीवरीय त्रासदी निर्मित करती है जिसके एक छोर पर आदर्श की अतिरंजनाएं हैं तो दूसरे छोर पर बच्चों को 'अबोध' मानने का मासूम आग्रह। न तो 'बड़ों जैसे' काम

में और न अबोधता की रूमानी छवि – इनके बीज से गुजरते दोस्त बाल साहित्य को तलाशने की ईमानदार कशमकश आज के बाल साहित्य लेखन में, जहां तहां ही सही, ढूंढ़ी जा सकती है और ऐसे प्रयासों का रेखांकन इस अंक में किया गया है। यह, कम से कम हमें तो, उम्मीद बंधाता है।

हमने कोशिश की है कि उन सवालों से टकराया जाए जो असुविधाजनक हैं और परम्परागत बाल साहित्य के व्यवस्थित मार्ग में थोड़ी खलबली पैदा करते हैं। हमारी पाठ्यपुस्तकें भी इसी राजपथ पर फर्राटे से दौड़ रही हैं । नैतिक उच्चादर्शों से बने इस राजपथ में पगडंडियां नहीं हैं। मित्रो, यदि आप को भी भारतीय समाज की विषमतामूलक स्तरीकृत संरचना परेशान करती है तो इस सुव्यवस्थित, सैन्यीकृत पंक्ति को तोड़ना होगा।

इस अंक की अनेक रचनाएं इस चुनौति से टकराती हैं।

आज जब नई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा में 'सूचनात्मक' भार से दब रहे बच्चों की पुकार सुनी जा रही है और विविध 'सह-शैक्षिक' आयामों को मुख्य शिक्षा का अंग बनाने की बात की जा रही है, इस अंक की प्रासंगिकता बढ़ जाती है। साहित्य उपोत्पाद नहीं है। कृपया पुराने उपदेशपरक साहित्य को ऊपर दुछत्ती पर डाल दें। बच्चे के लिए सर्जनात्मकता के नए अर्थ खोलने वाला साहित्य ही उसके व्यक्तित्व को नए आयाम दे सकता है। जब शिक्षा सबको प्राप्त होगी तो बाल साहित्य की परिधि भी फैलेगी। तब हाशिए की आवाजें अपनी अनुगूंज सुनना चाहेंगी। तब बाल साहित्य की केद्राभिमुखता भी प्रश्नचिन्हित होगी। शायद हम इस अंक में यह नहीं कर पाए हैं पर इतना निश्चित है, बाल साहित्य में इस देश की बहुल सांस्कृतिक छटा और सभी वर्गों के प्रतिनिधित्व की सुनिश्चितता के बिना हमारी शिक्षा की सार्वभौमिकता अधूरी ही रहेगी।

पर अगली पीढ़ी आकर पूछे – 'क्यों ?' इसके पहले ही हमें वक्त की आहट को नहीं पहचान लेना चाहिए ?

●

इस अंक में जिन साथियों ने रचनाएं भेजीं, उन सभी के हम हृदय से आभारी हैं; जिन्होंने ईमानदार असमर्थता जताई उनके भी हम आभारी हैं। प्रकाश मनु ने बारम्बार फोन कर काम के साथ आत्मीय जुड़ाव बना लिया और हमें अपनी जिम्मेदारी के प्रति सतर्क बनाया। सहजो जी ने मोन्तेरियो लोबेतो नामक जादुई रचनाकार की दुनिया में हमारा प्रवेश कराया और हम लेलिन्हा की मन्त्रमुग्ध दुनिया में एलिस सरीखे पहुंच गए। अडिग ने पूरे अंक को 'धैर्यपूर्वक' पढ़कर उसे प्रकृतिनुरूप चित्रों से सुसज्जित किया। हमारे कम्प्यूटर ऑपरेटर नीरज ने कई लम्बी बैठकें हमारी 'फौरन' वाली मांगों को पूरा करने के लिए बिना किसी न नुकर के कीं। इन सभी को बहुत बहुत धन्यवाद। देवयानी, शिवकुमार, प्रभात, रवि, शेखर जी, प्रज्ञा प्रमोद आदि के साथ सामूहिक बहसों ने ही हमारी दिशा निर्धारित की।

रोहित जी ने योजना को आकार देने में पूरी छूट दी और कभी सुझाव भी दिए तो इतने हौले से कि हमें लगा, 'अरे, यही तो हम सोच रहे थे।' उनके भरोसे का आभार और इससे भी ज्यादा आभार इस बात का कि उनके कारण हम दोनों को बरसों के बाद इकट्ठे काम करने का मौका मिला। जाहिर है सारी जिम्मेदारी हमारी है।

●

एक नाटक प्रेक्षागृह में बैठे दर्शकों को बाद में प्रभावित करता है। सबसे पहले वह बार-बार रिहर्सल के दौरान रंगकर्मियों को प्रभावित करता है। हम दोनों तो इस अंक के संपादन के दौरान काफी बदले हैं ; अब यह आपके हाथों में है ...

प्रतिक्रियाओं का इंतजार रहेगा। ◆

हिमांशु